

## “जे० कृष्णमूर्ति की शिक्षा नीति की प्रासंगिकता का अध्ययन”

आरती गौतम\*

प्रस्तावना :-

व्यक्तियों की अभिवृत्तियों का परिष्कार करना दर्शन का कार्य है। हम अपने दैनिक कार्य में अपने दृष्टिकोण से प्रेरणा लेते हैं। ये दृष्टिकोण अनेक प्रकार के होते हैं। इसलिये ये कहा जाता है कि महान पुरुषों के अपने-अपने दार्शनिक दृष्टिकोण होते हैं। जे कृष्णमूर्ति जी का शिक्षा के प्रति अपना अनोखा, नवीन तथा व्यापक दर्शन रहा है, जिसका प्रस्तुतीकरण प्रकृतिवाद, विचारवाद, प्रयोजनवाद तथा यर्थाथजनवाद का सन्दर्भ लेते हुए किया जायेगा। इस प्रकार से अपनी शैक्षिक विचारधारा की विश्वसनीयता स्पष्ट हो सकेगी।

पाश्चात्य शिक्षा-शास्त्रियों ने शिक्षा के व्यापक स्वरूप को अपनी सोच, दृष्टिकोण तथा आन्तरिक बल के आधार पर प्रस्तुत किया है। श्रीमद्भगवत गीता के अनुसार आत्मान एवं विराट पुरुष का ज्ञान प्राप्त करना ही शिक्षा है। महात्मा बुद्ध के संदेश में व्यक्ति को सत्यान्वेषण करना चाहिए और नैतिक गुणों को व्यवहार में उतारना चाहिए। “महात्मा गांधी” के अनुसार शिक्षा से मेरा तात्पर्य इस प्रक्रिया से है जो बालक एवं मनुष्य के शरीर एवं आत्मा के सर्वोत्कृष्ट रूपों को प्रस्फुटित कर दे। “रवीन्द्रनाथ टैगोर” ने शिक्षा को जीवन और सम्पूर्ण सृष्टि में तादात्म्य स्थापित करना बताया है। राधाकृष्णन के अनुसार-शिक्षा सूचना प्रदान करने एवं कौशल का प्रशिक्षण देने तक सीमित नहीं है। इसे शिक्षित व्यक्ति को मूल्यों का विचार भी प्रदान करना है। वैज्ञानिक एवं तकनीकी व्यक्ति भी नागरिक हैं, अतः जिस समुदाय

\* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, (शिक्षाशास्त्र विद्यापीठ विभाग), बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर विश्व विद्यालय, लखनऊ

में वे रहते हैं उस समुदाय के प्रति उनका भी सामाजिक उत्तरदायित्व है। कवियत्री सरोजनी नायडू के विचार से शिक्षा व्यक्ति में आत्म प्रकाशन की अधिकार पूर्ण शैली को खोजने में सच्ची लगन और मौलिकता का विकास करना है। ओशो के अनुसार शिक्षा मानव आत्मा में जो कुछ निहित है उसे अभिव्यक्त करने का माध्यम और उपाय है। शिक्षा तब सप्राण होगी, जब वह अपनी आजीविका को ही नहीं वरन् जीवन जीना भी सिखायेगी। मैं सब कुछ जान लूँ, लेकिन स्वयं की ही सत्ता, से अपरिचित रह जाऊँ तो वह जानना वस्तुतः जानना नहीं है ऐसे ज्ञान का क्या मूल्य जिसके केन्द्र पर “स्वान” न हो? यदि स्वयं के भीतर अंधेरा हो तो सारे जगत में भरे प्रकाश का हमारे लिए क्या उपयोग है। ज्ञान का प्रथम चरण “स्वज्ञान” से ही चाहिए, क्योंकि ज्ञान का अंतिम लक्ष्य वहीं है। “

### जीवन परिचय —

ग्यारह मई अट्टारह सौ पञ्चानवे (1895) को भारत के दक्षिण क्षेत्र में धार्मिक प्रदेश “आन्ध्र प्रदेश” के चित्तूर जिले में एक गाँव “मदनपल्ली” में आपका जन्म हुआ था। आपके माता पिता “जिद्दू संजीवम्मा” एवं “जिद्दू नारायणीय” थे। आप लोग बहुत ही धार्मिक स्वभाव के और श्रीकृष्ण के भक्त थे। इसके साथ ही साथ आप लोग पुराने “थियोसोफिस्ट” भी थे। आपका जन्म भगवान श्रीकृष्ण के प्रति भक्तिभाव और धार्मिक-वृत्ति के कारण माना जाता है। सम्भवतः आपका जन्म श्रीकृष्ण जी के जन्म लेने की परिस्थिति में आठवी संतान के रूप में हुआ था। सभी लोग आप को श्रीकृष्ण जी की प्रतिमूर्ति समझने लगे। इसीलिए प्रेम से इनको “कृष्ण जी” भी कहने लगे और आगे चलकर प्रतिमूर्ति आप जिद्दू कृष्णमूर्ति के नाम से संसार में प्रसिद्ध हुए।

अचानक माता संजीवम्मा का स्वर्गवास सन् 1905 ई0 में हो गया। आपके पिता श्री के सामने बच्चों के पालन पोषण की समस्या उत्पन्न हुई, इसलिए सन् 1908 ई0 में आप बालक जिद्दू कृष्णमूर्ति सहित अपने चार पुत्रों को लेकर ‘थियोसोफिकल’ सोसायटी मद्रास चले गये। उस समय श्रीमती

## ●●● वीथिका ●●●

एनीबेसेन्ट इस सोसाइटी की सर्वेसर्वा थीं। वहां पर रहने का आमंत्रण श्रीमती एनीबेसेन्ट से मिला था। अतः श्री जिद्दू नारायनी अपने इन बच्चों के साथ वहां पर रहने लगे और अपनी सेवाएँ सोसाइटी को समर्पित कर दी। ताकि बच्चों का अच्छा पालन हो सके।

प्रस्तुत शोध कार्य का मुख्य उद्देश्य है —

जे० कृष्णमूर्ति की शिक्षानीति की प्रासंगिकता का अध्ययन करना।

### शोध विधि :

इस अध्ययन में **जे० कृष्णमूर्ति** के शिक्षा सम्बन्धी विचारों की समीक्षा की गयी है। किसी भी शिक्षा शास्त्री के विचारों पर उसके जीवन की घटनाओं एवं परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है अतः **जे० कृष्णमूर्ति** के जीवन की प्रमुख घटनाओं एवं उनके कार्यों का सबसे पहले विश्लेषण किया गया है। शिक्षा सम्बन्धी विचारों को अध्ययन करने की एक विधि ऐतिहासिक विधि है जिसमें इतिहास की पद्धति अपनायी जाती है। इस पद्धति में व्यक्ति के जीवन की प्रमुख घटनाओं को देखा जाता है और उन घटनाओं के पारस्परिक सम्बन्धों का विश्लेषण किया जाता है।

### शिक्षा नीति :-

शिक्षण को अंतः क्रिया के आधार पर सम्पन्न किया जाता है। शिक्षा में बच्चों को केन्द्र मानकर मनोवैज्ञानिक तरीकों से ज्ञान दिया जाता है ताकि प्रत्येक छात्र ज्ञान को व्यवहारिक रूप से आत्मसात कर सके। महान शिक्षाशास्त्री “गार्लिक” ने शिक्षण के तरीकों को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि शिक्षक का निर्णय कि वह क्या पढ़ायेगा, विषय सामग्री को व्यवस्थित करना और बाद में वह सोचता है कि वह उनको किस प्रकार से व्यवस्थित करके प्रस्तुत करना है आदि कार्य शिक्षण विधियों में आते हैं।

### शिक्षण-विधि :-

जे० कृष्णमूर्ति जी ने प्राचीन तथा प्रचलित शिक्षण प्रविधियां, और

शिक्षण सूत्रों को न मानकर नवीन शिक्षण विधियों को माना है क्योंकि उनका शिक्षण करने का तरीका मनोवैज्ञानिक रहा है। वे शिक्षा को भयरहित, दवाब रहित तथा संस्कार रहित मानते हैं। इसीलिए उनकी शिक्षण विधियां भी भिन्नता रखती है।

बच्चों में क्रिया करने की भावना होती है। इस भावना का विकास स्वक्रिया या हाथ से कार्य करने के द्वारा सीखने की ओर प्रेरित होना चाहिए ताकि वह विभिन्न प्रकार के स्वनिर्मित अनुभवों (ज्ञान) को एकत्रित कर सकें। आज हम विभिन्न तरीकों से शिक्षा देने का प्रयत्न करते हैं जो उनके स्वाभाविक विकास में बाधक होता है। स्वक्रिया द्वारा सीखा गया ज्ञान रुचिमय, क्रियामय, स्थायी और व्यवहारिक होता है जो बालक के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक है।

बच्चों में खोज प्रवृत्ति जन्म से होती है। उनकी संवेदन शक्ति तथा प्रत्यक्षीकरण भाव बहुत ही तीव्र होता है। वे परिवार की वस्तुओं, व्यक्तियों, विचारों, इशारों को पहचान कर व्यवहार करना दिन प्रतिदिन सीखते हैं और उनमें नया करने की ओर ललक बनी रहती है। अतः वे अपनी समस्याओं, बाधाओं, रुकावटों, उलझनों को स्वयं दूर कर सकें, ऐसा हल खोजने की प्रवृत्ति का विकास शिक्षक द्वारा होना चाहिए।

बच्चों में अवलोकन या निरीक्षण की प्रवृत्ति विशेष होती है। अतः वे सभी जानकारियों को छूकर, देखकर, सूँघकर और समझकर प्राप्त करते हैं। अवलोकन से ज्ञान की प्रतिमा उनके मस्तिष्क में स्थापित हो जाती है और फिर वे उसका प्रयोग अपने व्यवहार में करने लगते हैं। अतः शिक्षण को निरीक्षण विधि के द्वारा दिया जाये तो वह सार्थक एवं स्थायी बन सकेगा। उनका मत है कि शिक्षक को स्वाभाविक तरीकों का प्रयोग करना चाहिए। मानव निर्मित बाध्यताओं से स्वाभाविक 16वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में एवं 17वीं शताब्दी के पूर्वान्ध में बेकन ने अपने विचारों से पश्चिम को अत्यधिक प्रभावित किया। उसने सत्यान्वेषण के लिए वैज्ञानिक निरीक्षण पर बल दिया और कहा

## ●●● वीथिका ●●●

कि यर्थाथ का ज्ञान अन्तर्दर्शन से प्राप्त न होकर बाह्य निरीक्षण से प्राप्त होता है।

कृष्णमूर्ति का मानना है कि कोई भी शिक्षक किसी भी प्रकार सत्ता का भय दिखाकर बालक में सदगुणों का विकास नहीं कर सकता इनके अनुसार सत्ता बड़ी भयानक, विनाशकारी एवं निरकुंश है अतः सत्ता का भय दिखाये बिना छात्र में अनुशासन ले आना कि वह समय पर भोजन करें, समय पर विद्यालय पहुँचें, अनावश्यक बातचीत न करें साथ ही उनमें आत्म सम्मान की भावना भी जागृत हो और वह छात्रों से सम्मान की मांग करता है तो स्वयं भी छात्रों का सम्मान करे। जो शिक्षक स्वयं अपने को नहीं समझते यदि बालक के साथ अपने सम्बन्ध को नहीं समझते, उनमें मात्र सूचनाएँ ही भरते रहते हैं तथा परीक्षाएं पास कराते रहते हैं वह नवीन शिक्षा का सृजन नहीं कर सकते। छात्र इसलिए होता है कि उसका मार्ग दर्शन किया जाये, यदि मार्गदर्शक स्वयं ही भ्रान्त, संकीर्ण राष्ट्रवादी सिद्धान्तों से ग्रस्त है तो स्वाभाविक ही उसका शिष्य भी वहीं होगा जो वह है।

ऐसी अवस्था में शिक्षा और अधिक भ्रान्ति तथा कलह का कारण बनेगी। एक सच्चा अध्यापक वह नहीं जिसने एक प्रभावशाली शिक्षण संस्थान का निर्माण किया या जो राजनीतिज्ञों का एक उपकरण है और न तो वह एक आदर्श, एक विश्वास अथवा एक देश से बंधा है। सच्चा अध्यापक अभ्यंतर से समृद्ध होता है। अतः अपने लिये कुछ नहीं चाहता, वह महत्वाकांक्षी नहीं होता इसलिए वह किसी भी रूप में सत्ता की चाह नहीं करता वह अपने अध्यापन को पद अथवा सत्ताधिकार प्राप्त करने का साधन नहीं बनाता और इसलिए समाज की बाद्धता से तथा संस्कारों के नियंत्रण से मुक्त होता है। एक प्रबुद्ध सभ्यता में ऐसे अध्यापकों का आधारभूत स्थान होता है क्योंकि सच्ची संस्कृति इन्जीनियरों और टेकनीशियों पर नहीं बल्कि शिक्षकों पर आधारित होती है।

### शिक्षार्थी

शिक्षार्थी हमेशा ज्ञान का भूखा होता है। वह प्रत्येक क्षण कुछ न कुछ

सीखता है और उसे अपने अनुभव का एक हिस्सा बना लेता है। सीखना तभी घटित होता है जब शिक्षक एवं शिक्षार्थी परस्पर संवाद की स्थिति में होते हैं।

“मेरे विचार से सीखना तभी होता है जब आपके और छात्र के बीच वही संवाद की अवस्था हो जो मेरे और आपके बीच है और संवाद का अर्थ सम्प्रेषण करना, सम्पर्क में आना, किसी अनुभूति को संचारित करना, सहभागी होना, न केवल शाब्दिक स्तर पर बल्कि बौद्धिक स्तर पर भी अनुभूति का और अधिक गहराई एवं और अधिक सूक्ष्मता से अनुभव करना।

जे०कृष्णमूर्ति जी के शिक्षार्थी सम्बन्धी विचारों को संक्षिप्त रूप से निम्न रूप में प्रस्तुत किया जाता है –

1. शिक्षार्थी को स्वतंत्रता और अनुशासनमय जीवन का विकास करना चाहिए ताकि वह सम्यक बुद्धि, संवेदनशीलता तथा अवबोध का विकास करके निश्चित व्यवस्था का अनुगमन कर सके।
2. शिक्षार्थी को एकाग्रता का विकास करने के लिए ध्यान करने की आदत डालनी चाहिए ताकि वह सत्य की अनुभूति शांतिपूर्ण तरीके से कर सके।
3. शिक्षार्थी को समग्र अवलोकन विधि का विकास करना चाहिए जिससे उसमें समष्टि के प्रति जागरूकता और समानता का भाव उत्पन्न हो सके।
4. शिक्षार्थी को लालची तथा स्वार्थी नहीं होना चाहिए ताकि वह पुरातन संस्कारों से रहित होकर स्वनिर्मित जीवन का विकास कर सके।
5. शिक्षार्थी की भावना धार्मिक और मनोवैज्ञानिक हो ताकि वह एक नूतन विश्व का निर्माण मानवीय प्रेम और सूक्ष्म तथा क्रमबद्ध ज्ञान से कर सकें।
6. शिक्षार्थी को समग्र पर्यावरण के प्रति जागरूक होना चाहिए ताकि वह संसार में फैले सत्य, सौन्दर्य, करुणा, कृपा के सही रूप से दर्शन कर सके।
7. स्वाभाविकता का विकास छात्र तभी कर सकता है जब किसी भी प्रकार

## ●●● वीथिका ●●●

- की आज्ञाकारिता से स्वयं को मुक्त करता है। तभी उसकी सोच ताजगी भरी एवं स्वाभाविक होती है जो स्व अनुभूति से विकसित होती है।
8. शिक्षार्थी को सदैव भय से मुक्त रहना चाहिए। भय का आविर्भाव मृत्यु(शारीरिक और विचारों की) से होता है। अतः जब हम में को समाप्त कर देते हैं तो मृत्यु का भय सदैव के लिए समाप्त हो जाता है।
  9. शिक्षार्थी को अहिंसा का पालन सदैव करना चाहिए ताकि वह किसी को भी विचार भाव, क्रिया आदि के द्वारा शोषण से बचा सके। इस प्रकार से मानवजगत में शांति स्थापित हो सकती है।
  10. शिक्षार्थी को अपनी समस्याओं के प्रति जागरूक होना चाहिए ताकि वह उनका निदान अपने तरीके से कर सके।
  11. शिक्षार्थी को अद्वैतवादी होना चाहिए जिससे उसमें संसार के प्रति आसक्त और अनासक्त विकसित हो सके। यही एक रास्ता परम् आनन्द का स्रोत है।
  12. प्रत्येक शिक्षार्थी को मुक्ति का प्रयास करना चाहिए ताकि वह सांसारिक भाव से ऊपर उठकर समग्र चेतना की अनुभूति कर सके। इस अनुभूति में वह संसार पर करुणा, दया, प्रेम, की वर्षा करता है और स्वयं में शांति, कोमलता, सौम्यता, उदारता, सहृदयता और सौन्दर्य का विकास करता है।

### अनुशासन

अनुशासन प्रत्येक मानव, समाज और राष्ट्र के विकास के लिए आवश्यक होता है। प्रश्न यह उठता है कि अनुशासन का स्वरूप दमनात्मक, प्रभावात्मक या मुक्तात्मक आदि में से कैसा हो? शिक्षार्थी के लिये अनुशासन परमावश्यक माना गया है। बच्चों का विकास विद्यालय के वातावरण में समाज के लिये तैयार किया जाता है। अतः विद्यालय की अपनी व्यवस्था, दिनचर्या, अध्ययन- अध्यापन शैली आदि ही अनुशासन का परिणाम होता है।

इसीलिए बोर्ड आफ एजूकेशन ने अनुशासन को एक साधन माना है जिसके द्वारा बच्चों को व्यवस्था, उत्तम आचरण और उनमें निहित सर्वोत्तम गुणों की आदत को प्राप्त करने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है।

चूंकि जे०कृष्णमूर्ति जी अनुशासन शब्द को उपयुक्त नहीं मानते हैं अतः इन्होंने व्यवस्था को ही अनुशासन माना है। इन्होंने “शिक्षा संवाद (पृ०२२) में लिखा है:-

“अनुशासन का अर्थ अनुकूलन, अनुकृति आज्ञा पालन है। इस का अर्थ यह भी है कि जो तुम्हें बताया जाता है वह करो। क्या ऐसा नहीं है? परन्तु यदि आप स्वतंत्र होना चाहते हैं और प्रत्येक मनुष्य को पूर्णतया स्वतंत्र होना चाहिए अन्यथा वे पुष्पित नहीं हो पायेंगे, अन्यथा वे वास्तविक मनुष्य नहीं बन पायेंगे तो आपको स्वयं अपने लिये वह पता लगाना होगा कि व्यवस्थित होने का क्या तात्पर्य है। इन सबकी खोज ही अनुशासन है।

श्री कृष्णमूर्ति छात्रों पर तथाकथित रूप से थोपे गये अनुशासन के विरोधी हैं। वे छात्र को पूर्ण स्वतंत्रता देने के पक्षधर है किन्तु स्वतंत्रता का अर्थ मनमानी करना नहीं होता। ऐसी स्वतंत्रता तो सर्वत्र अव्यवस्था ही फैलायेगी स्वतंत्रता का अर्थ छात्र को समग्र अवलोकन करने की स्वतंत्रता, जिज्ञासा व्यक्त करने की स्वतंत्रता, शिक्षक से वार्तालाप एवं सन्देह प्रकट करने की, निरीक्षण करने की स्वतंत्रता आदि है। कृष्णमूर्ति अनुशासन को व्यवस्था का नाम देते हैं और स्वतंत्रता एवं व्यवस्था का एक सिक्के के दो पहलू मानते हैं। व्यवस्था स्वाभाविक रूप से खिलने वाला फूल है जो कभी मुरझाता नहीं है क्योंकि यह अन्तर्मन की उपज है। कृष्णमूर्ति के अनुसार एक अनुशासित मन कदापि स्वतंत्र नहीं होता और न वह मन स्वतंत्र है जिसने इच्छाओं को दबा दिया है। केवल वही मन स्वतंत्र है जो इच्छाओं की समस्त गतिविधियों को भली प्रकार समझता है। उस गति को संचारित करता है जो विचार एवं विश्वासों के घेरे के भीतर होती हैं। ऐसे अनुशासन से ही व्यवस्था आती है व्यवस्था से स्वतंत्रता का जन्म होता है और स्वतंत्रता में ही अच्छाई प्रेम एवं

## ●●● वीथिका ●●●

प्रज्ञा का प्रस्फुटन होता है, स्वतंत्रता में ही पक्षी उड़ सकता है, बीज अंकुरित होता है। बालक विवेक जन्य आन्तरिक स्वतंत्रता में दूसरों का ध्यान रखकर वार्ता को ध्यान से सुनकर, समय पालन कर, स्वाध्याय कर आत्मानुशासन को प्राप्त होता है। यही उत्तम अनुशासन है।

### विद्यालय

आधुनिक युग में स्कूल (विद्यालय) शब्द की उत्पत्ति लेटिन शब्द स्कोला से मानी जाती है। इसका अर्थ होता है आराम या अवकाश। इस सन्दर्भ में ए० एफ० लीच ने लिखा है—“वाद—विवाद या वार्ता के स्थान जहां एथेन्स के युवक अपने अवकाश के समय को खेल—कूद, व्यायाम और युद्ध के प्रशिक्षण में बिताते थे, धीरे— धीरे वशन और उच्चकलाओं के स्कूलों में बदल गये। एकेडमी के सुन्दर उद्यानों में व्यतीत किये जाने वाले अवकाश के माध्यम से विद्यालयों का विकास हुआ।”

जे०कृष्णमूर्ति जी के विद्यालय सम्बन्धी विचार को निम्न विशेषताओं में प्रस्तुत किया जाता है:—

1. विद्यालय का वातावरण समन्वित व्यक्तित्व के विकास में सहायक होता है जो एक नवीन विश्व तथा संस्कृति के निर्माण में सहयोग देता है। इन्होंने 'शिक्षा एवं जीवन का महत्व' (पृ०73) लिखा है— “आशा केवल समन्वित व्यक्ति से ही की जा सकती है और उन्हें उत्पन्न करने में छोटे विद्यालय ही सहायक सिद्ध हो सकते हैं। यही कारण है कि बड़ी शिक्षण संस्थाओं में आधुनिकतम एवं श्रेष्ठतम शिक्षा पद्धतियों का प्रयोग करने के स्थान पर सीमित संख्या में बालकों एवं बालिकाओं वाले ऐसे विद्यालयों का होना अधिक महत्वपूर्ण है जिनमें उचित प्रकार के शिक्षक अध्यापन कार्य करते हों।
2. विद्यालय के ऊपर अधिकार या नियंत्रण न सरकार का हो और न समाज का बल्कि उस व्यक्ति का हो जो स्वयं के प्रति ईमानदार तथा जागरूक

है। वह स्वयं को जानता है, बच्चों को समझता है और नवीन पर्यावरण के सृजन में रुचि रखता है। जे०कृष्णमूर्ति का मत है कि ऐसा व्यक्ति अपने घर पर ही छोटा मोटा विद्यालय खोलकर उत्साह के साथ शिक्षण कर सकता है। यदि वह सही है तो उसे अवसरों की कमी नहीं रह सकती। अच्छे विद्यालय की स्थापना के लिए आत्म त्याग, प्रेम और अवबोध की आवश्यकता होती है। यदि बालक के प्रति प्रेम है तो सभी वस्तुएँ सम्भव हैं, अन्यथा धन अनिवार्यतः भ्रष्ट बना देता है।

3. विद्यालय एक नाव, परिवार की तरह से होता है जिसे चलाने वाला योग्य, अनुभवी, उत्साही, क्रियाशील तथा प्रज्ञायुक्त होना चाहिए, ताकि विद्यालय रूपी परिवार अपने अस्तित्व को नवीन कलेवर में विकसित कर सके। जे०कृष्णमूर्ति जी का मानना है कि सही विद्यालय का निर्माण प्रधानाध्यापक तथा उसके सहयोगियों द्वारा ही होता है। एक दृढ़ चरित्र वाला व्यक्ति विद्यालय का निर्माण तो कर सकता है लेकिन साथियों का सहयोग नहीं ले सकता। यदि सभी विद्यालय के लोग मुक्त एवं विवेकशील होने के लिए प्रयत्नशील हों तो प्रत्येक स्तर पर एक दूसरे का साथ एवं सहयोग संभव हो जाता है।
4. विद्यालय को सामूहिक रुचि का केन्द्र होना चाहिए। जब आपस के विचार और कार्य टकराते हैं तो विरोध और भ्रान्ति पैदा होती है, जिसको प्रेम व उत्साह के द्वारा ही करके सहयोग का सम्बर्द्धन दिया जाता है। आपने "शिक्षा एवं जीवन का महत्व" (पृ० 84-85) में लिखा है— "किसी भी अध्यापक को प्रधानाध्यापक से भयभीत नहीं होना चाहिए और न प्रधानाचार्य को ही अपने वरिष्ठ अध्यापकों से। जब सभी व्यक्तियों के बीच समानता होती है तो सुखद सहमति संभव होती है यही सही प्रकार के विद्यालय का चरित्र होता है। वास्तविक सहयोग तभी प्राप्त होता है जब उच्च एवं निम्न भाव का अस्तित्व ही न रहे।
5. विद्यालय की कार्यप्रणाली की समरसता उसकी समान वितरण की

## ●●● वीथिका ●●●

भावना पर टिकी होती है। आज मनोवैज्ञानिक तथा शिक्षा- शास्त्री विद्यालय के कार्यों को बोझ न मानकर रचनात्मक कार्य मानते हैं। अतः प्रत्येक की क्षमता तथा योग्यता के आधार पर कार्य (भार )का समान वितरण विद्यालय में सुखद वातावरण तैयार करता है। इनके अनुसार – “सही शिक्षा एक बड़े समूह में नहीं दी जा सकती। प्रत्येक बालक को अध्ययन के लिए धैर्य, सावधानी, सम्यक बुद्धि की आवश्यकता होती है। बालक की प्रवृत्तियों का, उसकी प्रवृत्तियों का एवं उसके स्वभाव का निरीक्षण, उसकी कठिनाइयों को समझना, उसके वंशानुक्रम तथा पैत्रिक प्रभाव को ध्यान में रखना, न कि उसे किसी विशेष वर्ग कोटि के ही अन्दर रखना, इसे सबके लिए स्फूर्ति से भरे एक ऐसे नमनीय मन की आवश्यकता होती है जो किसी विशेष प्रणाली अथवा पूर्वाग्रह से अनुशासित नहीं है। उसके लिए कुशलता की, तीव्र अभिरुचि की और सबसे अधिक प्रेम भावना की आवश्यकता होती है और ऐसे शिक्षकों का विकास करना जिनमें ये गुण हो, आज की प्रमुख समस्याओं में से एक है।”

6. विद्यालय के संचालन में प्रधानाचार्य, शिक्षकवर्ग, छात्रवर्ग तथा कर्मचारीवर्ग सभी का उचित प्रतिनिधित्व होना चाहिए ताकि जनतंत्रीय व्यवस्था का अनुपालन संभव हो सके। विभिन्न समितियों का गठन हो, कार्य वितरण हो, निर्देशन की व्यवस्था हो, उत्तरदायित्व का पालन किया जाये ताकि विद्यालय की सभी क्रियाओं में समरसता उत्पन्न हो सके। इस प्रकार से विद्यालय का प्रशासन ही जीवन में स्वशासन को स्थापित करने की पूर्व प्रस्तुति है।
7. विद्यालयों के द्वारा समग्र मानव जाति, समाज, राष्ट्र, सम्प्रदाय, धर्म, जाति, उच्च, निम्न आदि भेदभाव को मिटाकर सभी के कल्याण के भाव की स्थापना का विकास करना है। इसके लिए स्वतंत्रता, समानता, भाईचारा आदि के भावों का विकास विद्यालयों के द्वारा होना चाहिए।

हममें से प्रत्येक को सच्चा बनना होगा और हमें स्वयं को शिक्षित भी करना होगा। अतः सम्यक शिक्षा के लिए धैर्य, सहानुभूति, तथा प्रेम को चारों ओर फैलाना चाहिए, जिससे सभी प्रकाशित हो सके।

### परिणाम एवं निष्कर्ष :-

1. एक सच्चा अध्यापक वह नहीं जिसने एक प्रभावशाली शिक्षण संस्थान का निर्माण किया या जो राजनीतिज्ञों का एक उपकरण है और न तो वह एक आदर्श, एक विश्वास अथवा एक देश से बंधा है। सच्चा अध्यापक अभ्यंतर से समृद्ध होता है। अतः अपने लिये कुछ नहीं चाहता, वह महत्वाकांक्षी नहीं होता इसलिए वह किसी भी रूप में सत्ता की चाह नहीं करता। वह अपने अध्यापन को पद अथवा सत्ताधिकार प्राप्त करने का साधन नहीं बनाता और इसलिए समाज की बाद्धता से तथा संस्कारों के नियंत्रण से मुक्त होता है। एक प्रबुद्ध सभ्यता में ऐसे अध्यापकों का आधारभूत स्थान होता है क्योंकि सच्ची संस्कृति इन्जीनियरों और टेकनीशियों पर नहीं बल्कि शिक्षकों पर आधारित होती है।
2. शिक्षार्थी हमेशा ज्ञान का भूखा होता है। वह प्रत्येक क्षण कुछ न कुछ सीखता है और उसे अपने अनुभव का एक हिस्सा बना लेता है। सीखना तभी घटित होता है जब शिक्षक एवं शिक्षार्थी परस्पर संवाद की स्थिति में होते हैं।
3. श्री कृष्णमूर्ति छात्रों पर तथाकथित रूप से थोपे गये अनुशासन के विरोधी हैं वे छात्र को पूर्ण स्वतंत्रता देने के पक्षधर हैं किन्तु स्वतंत्रता का अर्थ मनमानी करना नहीं होता ऐसी स्वतंत्रता तो सर्वत्र अवस्था ही फैलायेगी स्वतंत्रता का अर्थ छात्र को समग्र अवलोकन करने की स्वतंत्रता, जिज्ञासा व्यक्त करने की स्वतंत्रता, शिक्षक से वार्तालाप एवं सन्देह प्रकट करने की निरीक्षण करने की स्वतंत्रता आदि है। कृष्णमूर्ति अनुशासन को व्यवस्था का नाम देते हैं और स्वतंत्रता एवं व्यवस्था को एक सिक्के के दो पहलू मानते हैं। व्यवस्था स्वाभाविक रूप से खिलने वाला फूल है जो

## ●●● वीथिका ●●●

कभी मुरझाता नहीं है क्योंकि यह अन्तर्मन की उपज है।

4. विद्यालय एक नाव, तरह से होता है जिसे चलाने वाला योग्य, अनुभवी, उत्साही, क्रियाशील तथा प्रज्ञायुक्त होना चाहिए, ताकि विद्यालय रूपी परिवार अपने अस्तित्व को नवीन कलेवर में विकसित कर सके। जे०कृष्णमूर्ति जी का मानना है कि सही विद्यालय का निर्माण प्रधानाध्यापक तथा उसके सहयोगियों द्वारा ही होता है। एक दृढ़ चरित्र वाला व्यक्ति विद्यालय का निर्माण तो कर सकता है लेकिन साथियों का सहयोग नहीं ले सकता। अतः अध्यापक सम्पूर्ण के लिए स्वयं को उत्तरदायी समझे।
5. विद्यालयों के द्वारा समग्र मानव जाति, समाज, राष्ट्र, सम्प्रदाय, धर्म, जाति, उच्च, निम्न आदि भेदभाव को मिटाकर सभी के कल्याण के भाव की स्थापना का विकास करना है। इसके लिए स्वतंत्रता, समानता, भाईचारा आदि के भावों का विकास विद्यालयों के द्वारा होना चाहिए।

### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. कृष्णमूर्ति— द इयर्स ऑफ अवेकेनिंग : मेरी लुटियेंस, कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन, इण्डिया, मद्रास।
2. कृष्णमूर्ति— द इयर्स ऑफ फुलफिलमेंट : मेरी लुटियेंस, एवन बुक्स, न्यूयॉर्क।
3. जे० कृष्णमूर्ति: रेने फाउरे, चेतना, बम्बई
4. द माइण्ड आफ जे० कृष्णमूर्ति: संपादित— लुई एस०आर०वास, जैको पब्लिशिंग हाउस, बम्बई
5. फिलोसोफी आफ जे०कृष्णमूर्ति: आर०के० श्रृंगी, मुंशीराम, मनोहर लाल, नई दिल्ली।
6. कपिल, एच०के० 1980 अनुसंधान विधियां— आगरा
7. पाण्डेय, आर०एस० 1970 शिक्षादर्शन आगरा

8. पाण्डेय आर०एस० 1993 मूल्य शिक्षा आगरा
9. ओड, एल०के० शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि ।

**Websites :**

- [www.eric.ed.gov](http://www.eric.ed.gov)
- [www.dartmouth.edu](http://www.dartmouth.edu)
- [www.en.wikipedia.org/wiki](http://www.en.wikipedia.org/wiki)